आयुर्वेद शास्त्र 'अमृत सागर' का विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ. विक्रमसिंह भाटी

आयुर्वेद का विभिन्न प्रकार के रोगों के निदान हेतु अनादिकाल से सहारा लिया जाता रहा है, वस्तुत: आयुर्वेद शब्द का अर्थ जीवन का विज्ञान से है। अत: जीवन को ठीक प्रकार से जीने का विज्ञान ही आयुर्वेद है, क्योंकि यह विज्ञान केवल रोगों की चिकित्सा या रोगों का ही ज्ञान प्रदान नहीं करता, बल्कि जीवन जीने के लिए सभी प्रकार के आवश्यक ज्ञान की प्राप्ति भी कराता है, जिसमें रोगों के विभिन्न लक्षणों को नाड़ी के माध्यम से जांचा परखा जाता था और उस रोग के निमित आयुर्वेद औषधियाँ जो विभिन्न किस्म की वनस्पतियों और उनकी जड़ों से बनाई जाकर उसका निवारण भी किया जाता। आयुर्वेद के संबंध में कई हस्तलिखित ग्रंथ अलग-अलग समय में लिपिबद्ध होते रहे, जो प्रकृति के पूजक के रूप में मानव जाति का कल्याण निरोगी काया के रूप में करते रहे हैं। इन ग्रंथों में प्रकृति सूचक पेड़-पौधों की छाल एवं फलों के साथ ही साथ उनकी जड़ों की ऐतिहासिक महत्ता भी उस रूप में उजागर होती है जिसमें मानव की देह निरोगी रह सके।

आयुर्वेद मुख्य रूप से जीवन का विज्ञान है। जीवन को प्रभावित करने वाली दो प्रमुख बातें हैं - प्रथम-शिक्षा और दूसरी-चिकित्सा। सभी मतों और धर्मों के प्रवर्तन तथा विस्तार के साथ इन दो के महत्त्वपूर्ण योगदान को परिलक्षित किया जा सकता है। वैष्णव मत में विष्णु के अवतारों में एक धन्वन्तरि बताये जाते हैं, जो आयुर्वेद के प्रवर्तक हैं। शैवमत में भी शिव के अठारह अवतारों में एक नकुलीश या लकुलीश नामक अवतार तो वस्तुत: चिकित्सक का ही रूप है। लकुलीश की पाई जाने वाली मूर्तियों के एक हाथ में हरीतकी और दूसरे हाथ में नाकुली बूटी को अंकित किया गया है। हरीतकी रसायन और रोगनाशन चिकित्सा का प्रतीक है तथा नाकुली विषचिकित्सा का। बुद्ध के एक रूप अवलोकितेश्वर को 'भैषज्यगुरु' माना जाता है। इसी प्रकार जैनमत में तीर्थंकरों की वाणी में भी चिकित्साशास्त्र के प्रादुर्भाव को स्वीकार किया गया है। जनमानस को प्रभावित करने के लिए शिक्षा और

चिकित्सा ही दो ऐसे माध्यम हैं, जो सर्वोपरि उपयोगी हैं।[1]

वस्तुत: आयुर्वेद विज्ञान ने शरीर की समग्र क्रियाओं का वर्गीकरण तीन प्रकार से किया है – स्थिति, पक्ति और गति। शरीर में जहाँ–जहाँ स्थिति का भाव है, उसे कफ–तत्त्वमूलक, जहाँ पक्ति का भाव है, उसे पित्तत्त्वमूलक और जहाँ गति का भाव है, उसे वायु–तत्त्वमूलक कहते हैं। उसे अदृश्य तथा उसके कार्यों को दृश्यमान माना जाता है। कफ तत्त्व शरीर का संवर्धन कर उसकी स्थिति को स्थिर बनाता है। पित्ततत्त्व इसके विपरीत पचाकर क्षीणकाय बनाने का कार्य करता है। इन दोनों–कफ और पित्त–के अतिरिक्त वायुतत्त्व अनेक स्वाभाविक चेष्टाओं को स्थित रखता है। जब तक यह तीनों तत्त्व अपनी 'सम'–उचित स्थिति में रहते हैं, तब तक शरीर स्वस्थ रहता है और जबकि इनमें से कोई तत्त्व 'विषम' या असाधारण स्थिति में होता है, तब रोगोत्पत्ति का कारण बन जाता है।[2]

आयुर्वेद के मतानुसार शरीर में वातादि धातु में कौन विषम और कौन असम हो जाती है, यह जान लेने पर रोग का कारण पकड़ में आ जाता है। असम हो जाने से तीनों दोषों की उत्पत्ति होती है। तीनों दोषों का शोधन और प्रकोप का प्रशमन कर उन्हें पुन: अपनी 'सम'–उचित स्थिति पर स्थापित करना ही रोग की वास्तविक चिकित्सा है। रोग–निदान की यह पद्धति वात–पित्त–कफ दोष की वृद्धि रोग का प्रमुख कारण है। फिर भी, कीटाणु आदि अन्य रोग कारणों से भी आयुर्वेद–चिकित्सा इनकार नहीं करती। रोग चिकित्सा में दोषशोधन और प्रकुपित या विषम हो जाने वाले वात–पित्त–कफादि को पुन: सम अवस्था में स्थापित करने पर आयुर्वेद अत्यधिक बल देता है। यह उद्देश्य जिन औषधियों से सिद्ध होता है, उनमें से सबका प्रयोग किया जाता है। आयुर्वेद तो त्रिदोष–चिकित्सा पद्धति ही है। दोष को रोग का कारण माना जाता है और दोष का निवारण या शोधन कर विषम धातु को सम स्थिति में लाने के प्रयत्न को दोष विपरीत चिकित्सा या दोष–प्रत्यनीक चिकित्सा कहा जाता है। आयुर्वेद का कथन है कि दोष उत्पन्न होने पर ही रोग की उत्पत्ति होती है। निर्दोष अवयव में रोग की उत्पत्ति कदापि सम्भव नहीं। आयुर्वेद की स्पष्ट घोषणा है कि दोष को उत्पन्न करने वाले कारण उन, कारणों से उत्पन्न दोष, उस दोष से उत्पन्न रस–रक्त–मांसादि शारीरिक धातुओं की विकृति–इन तीनों को मिटाने का उपाय भली–भांति सोच–विचार कर किया जाये, तो रोग नि:संदेह दूर हो जायेगा।

पाश्चात्य चिकित्सा–विज्ञान 'कीटाणु–विपरीत' अथवा 'लक्षण–विपरीत'

चिकित्सा पर जोर देता है। फलत: तात्कालिक लाभ तो महान् होता है, किन्तु स्थायी लाभ बिलकुल होता ही नहीं। इसके विपरीत आयुर्वेद शरीर में एकत्रित हुए दोषों के निवारण अथवा शोधन पर तथा विषम हुए वायु-पित्त-कफ को पुन: सम अवस्था में पहुँचा देने पर जोर डालता है, फलत: रोग का समूलोन्मूलन हो जाता है, अर्थात् रोग की जड़ ही कट जाती है, यहाँ यह कहने का आशय नहीं, कि कौनसी चिकित्सा-पद्धति अत्युत्तम है। दोनों ही पद्धतियाँ-आयुर्वेद और पाश्चात्य-उत्तम हैं। किन्तु आयुर्वेद-चिकित्सा-पद्धति तो रोग को शरीर जन्य मानती है और शरीर में उत्पन्न दोष के निवारण पर जोर देती है। पाश्चात्य चिकित्सा पद्धति मुख्य रूप से रोग को बाहर से आया हुआ मानती है और कीटाणु आदि कारणों का प्रतिकार करने में अधिक वजन डालती है। जो पद्धति शरीर को निर्दोष बनाने की ओर विशेष ध्यान देती है, वही रोग के मूल को उखाड़ फैंकने में समर्थ होती है, इसीलिये आयुर्वेद चिकित्सा-पद्धति अधिक पूर्ण एवं वैज्ञानिक चिकित्सा मालूम पड़ती है।[3]

भारतीय दर्शन-शास्त्र एवं पाश्चात्य फिलॉसफी दोनों को ही यह सिद्धान्त मान्य है कि बिना कारण कुछ भी घटित नहीं होता। विज्ञान की वैज्ञानिकता दर्शन के बिना नहीं आंकी जा सकती। भारतीय महर्षियों द्वारा प्रणीत हमारा दर्शनशास्त्र जो वस्तुत: तत्त्व ज्ञान पूर्ण है उसके प्रथम सोपान तक भी विज्ञान की पहुँच नहीं इसे पाश्चात्य विद्वान भी अब मानने लगे हैं। आयुर्वेद का दर्शन के साथ भी घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। मूलरूप से आयुर्वेद केवल चिकित्सा विज्ञान ही नहीं अपितु सर्वांगीण सम्पूर्ण जीवन विज्ञान का सागर है।

राजस्थानी शोध संस्थान चौपासनी में करीब 400 आयुर्वेद से सम्बन्धित हस्तलिखित ग्रंथ संग्रहीत हैं। वस्तुत: 'अमृत सागर' ग्रंथ जयपुर के शासक श्री सवाई प्रतापसिंहजी द्वारा लिखित है। इस ग्रंथ की लोकप्रियता का ही प्रमाण है कि इसकी आगे चलकर संस्कृत, हिन्दी, राजस्थानी एवं ब्रज भाषा में भी नकलें की गईं। राजस्थानी शोध संस्थान चौपासनी में 'अमृत सागर' आयुर्वेदिक ग्रंथ की 4 हस्तलिखित पोथियाँ हैं, जिनमें जोधपुर के रावतों का वास निवासी कुंबार रुघनाथ जिसने 'अमृत सागर' का राजस्थानी रूपान्तरण वि.सं. 1915 तदनुसार 1858 ई. में वीरजी पातावत की आज्ञा से किया था, जिसका ग्रंथांक नं. 8606 है। यथा –

लिखंत कुबार रुघनाथ वास जोधपुर मध्ये मोजो रावतां रो वास समत 1915 रा मिति असाढ सुदि 10 वचनार्थ पातावत विरजी।

इसमें कुंबार रुघनाथ के द्वारा जो मूल 'अमृत सागर' ग्रंथ से राजस्थानी भाषा में नकल की गई उसका सम्पादन करने का श्रम किया गया है, जिसमें मूत्र परीक्षा, सुपन परीक्षा, दूत परीक्षा (वैद्य को बुलाने वाला कैसा व्यक्ति हो), काल ज्ञान, औषधि विचार, देश विचार, कर्म विचार, अग्नि बल विचार, रोग की असाध्य परीक्षा, मल का रोग, छींक रोकवा को रोग, भूख रोकवा को रोग, नींद रोकवा का रोग, सांस रोकवा को रोग, उबासी रोकवा को रोग, मन रोकवा को रोग, कामदेव रोकवा को रोग, आठ प्रकार के ज्वर-इलाज, अतिसार रोग की उत्पत्ति, इलाज, पित्त का रोग, इलाज, कफ की संग्रणी की उत्पत्ति व इलाज, बवासीर का रोग व इलाज, रोगों की उत्पत्ति, रक्तपित्त रोग लक्षण-इलाज, उन्माद रोग उत्पत्ति लक्षण, मिरगी रोग-उत्पत्ति लक्षण-जलन त्वचा संबंधी रोग आदि। इसी प्रकार आगे कोढ़ और क्षय रोग जैसी भयंकर बीमारियों के विभिन्न लक्षण एवं इलाज आदि दिये हैं।[4] अन्त में स्त्रियों के विभिन्न रोगों व उनके इलाज आदि का वृत्तांत है। इन रोगों के कारणों, समाधान एवं निवारण के लिये आयुर्वेदिक चिकित्सा पर विस्तार से प्रकाश डाला है।

'अमृत सागर' ग्रंथ में बालकों के अलावा वयस्क एवं बुजूर्ग वर्ग की श्रेणी में प्राय: होने वाले सभी प्रकार के रोगों की उत्पत्ति उन पर विचार और परीक्षा का ब्यौरा देते हुए उस रोग को जड़ से नष्ट करने की जानकारी मिलती है। इतना ही नहीं इस ग्रंथ में विभिन्न रोगों के ठीक होने से सम्बन्धित मंत्र भी दिये गये हैं। यदि इन मंत्रों को सही ढंग से यथा-समय एवं यथा विधि से उच्चारित किया जाए तो मनुष्य, बालक, स्त्री आदि के रोग तत्काल ठीक हो सकते हैं। यहाँ बालक के नंदा नाम मातृ का दोष दूर करने के लिए एक मंत्र का उदाहरण दृष्टव्य है, यथा – *अथ उतारा को मंत्र लि., ऊँ नमो भगवंते रावणाय हनहनं मूंच मुच स्वाहा।* जोधपुर में जब कुंबार रुघनाथ के द्वारा 'अमृत सागर' ग्रंथ का राजस्थानी भाषा में अनुवाद किया गया उस समय जोधपुर के महाराजा तख्तसिंह का शासनकाल था।

'अमृत सागर' ग्रंथ का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि जयपुर नरेश श्री सवाई प्रतापसिंहजी ने जब इस ग्रंथ की रचना की तब अनेक आयुर्वेदिक ग्रंथों का सहारा लिया था, राजस्थानी में लिपिबद्ध इस हस्तलिखित ग्रन्थ में उनके नाम भी अलग-अलग रोगों के सन्दर्भ में मिलते हैं, जिनमें वृंद, सर्व संग्रह, वैद्य जीवन, वैद्य रहस्य, वैद्य विनोद, भाव प्रकास, पर्देश्वर रस रूद्रदत्त, चरक, हारित, धन्वंतरी सिंहता, काशीनाथ पद्यति (पद्धति), सार संग्रह, रसार्ण, रस समूह, जोग चिंतामणि, जतन

रूद्रदत्त, भ्रगु हरित, सुश्रुत, ईलादि चूर्ण वृंद, घोड़ा चोली रस वैद्य रहस्य, चक्रदत्त, वैद्योपचार ग्रंथ, जोग रत्नावलि, योग तरंगणी, रस वर्णव, रत्न प्रदीप, जोगराज मृंगल वात व्याधि, वीर सिंहावलोकन, सर्व उडीस, आत्रेय, राज मारतंड, रस रत्नाकर, रतनदीप, वैद्य कतूहल, सिंधु, वैद्य वल्लभ, सारंगधर वागभट्टादिका, वागभट्ट इत्यादि प्रमुख रूप से है।

इस प्रकार अनेक आयुर्वेदिक ग्रंथों का सहारा लेकर इस ग्रंथ की रचना की गई है। ग्रंथकार ने इस ग्रंथ के सहायक सन्दर्भ ग्रंथों का उल्लेख कर अपनी ईमानदारी का परिचय दिया है। बालक के ग्रह दोष को दूर करने से सम्बन्धित एक मंत्र जो भाव प्रकास से लिया गया है, यथा– *अथ मंत्र लिख्यंते, अजान नश्वलाक्षि भू कांम रूपी महायसा वाल पालय तो देवो ने गमेयोऽभिरक्षतु 29 ई मंत्र सूं वड़ के नीचे बालक ने स्नान करावे तो बाल ग्रह जाय 4 ये सर्व जतन भाव प्रकास में लिख्या छै।*

यह ग्रंथ 25 स्तरंगों (अध्यायों) में विभक्त है। जहाँ स्तरंग शुरू होती है वहाँ से लगाकर स्तरंग के संपूर्ण होने तक रोगों के बारे में उल्लेख है। उनके लक्षण व उपचार के बारे में विस्तार से बताया गया है। स्तरंग के अन्त में संपूर्ण रोगों के नाम गिना दिये गये हैं, यथा –

ईती श्री मन्महाराजाधिराज राजेन्द्र श्री सवाई प्रतापसिंह विरिचिते यां अमृत सागर नांम ग्रंथे सर्व आसव की विधि 1 पीवा की विधि 2 सिलाजीत सोधन 3 जो खार नै आदि लेर खारां की विधि 4 चणखारं सोधवा की विधि 5 स्नेह विधि 6 प्रस्वेदा विधि 7 वमन विधि जुलाब विधि, हरड़े खावा की विधि, वस्ती कर्म होका ने आदि लेर धूंमपांन की विधि, लोही छुड़ावा की विधि निरूपणं नांम चतुर्विंसतिम स्तरंग 24[5]

प्रत्येक रोग के लक्षणों पर विस्तार से प्रकाश डालने के साथ ही उसके निवारण के अलग–अलग उदाहरण भी दिये हैं, जहाँ बीमारियों के उपचार की बात करते हैं तो उसमें प्रत्येक बीमारी में प्रयुक्त होने वाली आयुर्वेदिक औषधि के नामोल्लेख के साथ ही दवा हेतु सामग्री कितनी मात्रा में कब और कैसे लेनी चाहिये, विभिन्न औषधियों की मात्रा के लिये टंक, टका, मासा, पईसा, तोला और रति का भी स्थान–स्थान पर उल्लेख हुआ है। कुछ रोगों के उपचार के दौरान खान–पान सम्बन्धी क्या परहेज़ रखा जाये उसके बारे में भी जानकारी दी है। यहाँ इनसे सम्बन्धित एक उदाहरण दिया जा रहा है, यथा – *अथ पुनः जुलाब लेवा की विधि प्रथम दिन पांच सात तो पुरस मंजुस ले सुनामुखी टंक 2, जीरो टंक 1, सौंफटंक 1, मनका दाख टंक*

2, गुलाब का फूल टंक 2, खांड टंक 10 यां सारां नै पाव तीन पांणी में औटाय तीकौ पांणी पाव 1 राखै पाछै पांणी छाणी रोजीना दिन च्यार पावे तो पेट के मल पचे अर निसरवो करे, अर रौजीना खीचड़ी घृत समेत खाय अर दिन पांचवै सुनामुखी टंक 10, जीरो टंक 2, सौंफटंक 5, खांड टंक 10 यानै औटाय दिन 3 तीन ले अर खीचड़ी घृत समेत खाय तो जुलाब आछौ लागै, अर ई सूं सारा रोग जाय, खाटो खारो खाय नहीं।

सर्वप्रथम ग्रंथ में रोग को परिभाषित करते हुए लिखा गया है कि कई प्रकार की पीड़ा होने का नाम ही रोग है, जिसके दो प्रकार प्रथम 'कायक' और द्वितीय 'मानस' है। काया में रहने वाले रोग 'कायक' जो व्याधि से जुड़ा है, जबकि 'मानस' जो मन में रहता हो जो आधि रोग से सम्बन्ध रखता है। अत: यह दोनों रोग वाय, पित्त, कफ का रूप लेकर शरीर में कई हानियां पहुँचाते हैं। अत: इस पर विशेष ध्यान दिया जाये तो देह ठीक रहेगी भोजन का भी सही पाचन होगा और शरीर भी स्वस्थ रहेगा। इसके पश्चात् समस्त प्रकार के रोगों की परीक्षा के तीन प्रकार बताये हैं, जिनमें नाड़ी परीक्षा, मूत्र परीक्षा एवं रोगी के अहवाल व प्रसंग को स्थान दिया है। नाड़ी परीक्षा के लिए लिखा है कि स्त्री एवं पुरुष के कौन से हाथ की नाड़ी देखनी चाहिये साथ ही किस समय में देखना उत्तम है, उस पर विस्तार से जानकारी दी है।

ग्रंथ का अवलोकन करते हैं तो ज्ञात होता है कि वैद्य के द्वारा रोगी पुरुष की नाड़ी दाहिने हाथ की और स्त्री की बायीं हाथ की देखने के पश्चात् नाड़ी के चलने की अवस्थाओं का ज्ञान करके रोग का पता लगाया जाता है। इसी प्रकार पांव की नाड़ी देखने का विधान भी ग्रंथ में हुआ है। नाड़ी परीक्षा एवं मूत्र परीक्षा के सम्बन्ध में यह भी मिलता है कि इस पर अधिक जानकारी श्री सवाई ईसरीसिंहजी के द्वारा लिखित पोथी में दी गई है। अत: यह भी ज्ञात हो जाता है, कि श्री सवाई प्रतापसिंहजी के पूर्व श्री सवाई ईसरीसिंहजी ने नाड़ी एवं मूत्र परीक्षा पर लेखन किया था। मूत्र परीक्षा में रोगी के द्वारा प्रात:काल किया गया मूत्र का संग्रहण कांसे आदि के बर्तन में करवा कर उसमें तेल की एक बूंद डालने पर इसके अलग-अलग परिणाम आने से अलग-अलग रोगों का कारण बताया गया है।

इसी तरह रोगी की परीक्षा में रोगी के अहवाल एवं प्रसंग के अन्तर्गत स्वप्न परीक्षा, दूत परीक्षा, सकुन परीक्षा आदि पर बड़ी ही महत्त्वपूर्ण जानकारी मिलती है। उपर्युक्त रोगों के विभिन्ना लक्षण प्रकट होने पर उसके उपचार हेतु कई आयुर्वेदिक

उपाय प्रत्येक रोग के सन्दर्भ में दिये गये हैं।

'अमृत सागर' ग्रंथ की भाषा सरल और सुवाच्य है। यह ग्रंथ राजस्थानी भाषा की ढूंढाड़ी बोली में लिखित है। इसमें संस्कृत और हिन्दी के शब्द भी काफी मात्रा में मिलते हैं। इस ग्रंथ में प्रयुक्त भाषा का एक नमूना यहाँ दिया जा रहा है, जिसमें यह बताया गया है कि कुछ शारीरिक रोग ऐसे हैं, जिन्हें दूर करने के लिए शरीर का गन्दा खून निकलवाना पड़ता है। गन्दा खून निम्नलिखित विधियों से निकाला जा सकता है, यथा –

अथ विसकर कै दुष्ट हुवौ जो लोही तिंकों लक्षण लिख्यंते, जींकों लोही कालो होय, अर नाक में घणौ चालै, दुरगंध घणी आवै, कांजी कौ सौ रंग हौय, ई सो कोढ होय आवै, अर सरीर में सौजौ होय आवै, सरीर में दाह होय, अंग फोड़ा फुणस्यां पक जाय, सरीर को वरण लाल होय, क्षई रौग हौय, वात रक्त कौ रौग हौय, कौढ कौ रौग हौय, हाथ पग में रोग हौय, श्लीपद रौग हौय, विसकरी लोही दुष्ट होय, 6 क्षुद्र रौग हौय, यां सूकौ रौग हौय, स्तन रौग हौय, सरीर भारौ रहै, लाल आंखी रहै, तंद्रा रहै, नासी का मूंढा को रोग हौय, उपदंस नांम गरमी को रौग हौय, फीया कौ गौला कौ विसर्प कौ रौग हौय, विद्रधी छाला मथवाय रक्त पित्त हौय, यां सारा रौगां में लोही कढावौ जोग्य छै, 8 सौ यां रौगां में लोही सींगड़ी अथवा जोख लगावै, अथवा तूबड़ी लगावै अथवा सीर छुडावै तदी मनुष्य नै लोही कढावो जोग्य छै।

उपर्युक्त पंक्तियों में राजस्थानी भाषा की ढूंढाड़ी बोली के साथ-साथ संस्कृत एवं हिन्दी भाषा के शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। इनमें शरीर का गन्दा खून निकलवाने के लिए देशी तरीके भी बतायें हैं जिनमें सींगड़ी देना, जोख लगवाना, तूबड़ी लगवाना और सीर छुड़ाना आदि मुख्य हैं।

यहाँ यह उल्लेख्य है कि मूल ग्रंथ के अन्त में उल्लिखित सभी रोगों के लक्षण व उपचारों की एक लम्बी सूची भी दी गई है। इतना ही नहीं रोग किस स्तरंग में और कौन से पृष्ठ पर है, इसका भी ग्रंथकार ने विवरण दिया है।

इसके साथ ही ग्रंथकार ने इस ग्रंथ में तत्कालीन समय में प्रचलित माप तौल की सूची भी दी है ताकि पाठक इन माप-तौलों के बारे में जानकारी हासिल करके कौनसी औषधि कितनी मात्रा में ली जानी चाहिए इसका ज्ञान कर सकें। अन्त में यह कहा जा सकता है कि 'अमृत सागर' ग्रंथ अपने आप में परिपूर्ण है। मनुष्य के शरीर में उत्पन्न होने वाली बीमारियों के लक्षण और उनके उपचारों के बारे में अनेक उदाहरण

देकर समझाया गया है। वर्तमान युग में यदि ग्रंथ में उल्लिखित रोगों के उपचारों से सम्बन्धित औषधियों का यथा समय एवं यथा मात्रा में सेवन किया जाए तो रोगों से स्थाई रूप से छुटकारा पाया जा सकता है।

संदर्भ :

1. राजेन्द्र प्रकाश भटनागर, *जैन आयुर्वेद का इतिहास,* सुर्य प्रकाशन संस्थान, उदयपुर, 1984, पृ. 1
2. विक्रमसिंह भाटी, *आयुर्वेदशास्त्र- अमृतसागर,* राजस्थानी शोध संस्थान, चौपासनी, जोधपुर, 2019, पृ. 1-3
3. *प्रसुति विज्ञानांक,* संपादक- आचार्य रघुवीर प्रसाद त्रिवेदी, धन्वंतरी कार्यालय, अलीगढ़, 1956
4. *अमृतसागर,* ग्रंथांक नं. 8606, राजस्थानी शोध संस्थान, चौपासनी, जोधपुर
5. *अमृतसागर,* पूर्वोक्त, पृ. 37-72
6. *अमृतसागर,* पूर्वोक्त, राजस्थानी शोध संस्थान, चौपासनी, जोधपुर

निदेशक

श्री नटनागर शोध संस्थान, सीतामऊ

जिला मन्दसौर (म.प्र.)